सतह के नीचे

मनोरमा श्रीवास्तव

सतह के नीचे

एक भारतीय नारी की कशमकश को
आधार बनाकर लिखा गया लघु उपन्यास

भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ
नयी दिल्ली-110002

सतह के नीचे

मनोरमा श्रीवास्तव

प्रकाशक :
भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ
'शफीक मेमोरियल'
17-बी, इन्द्रप्रस्थ एस्टेट
नयी दिल्ली-110002
टेलीफोन : 3319282

ग्रन्थांक : 153
© भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ : मूल्य 3.00
पहला संस्करण 1985

मुद्रक :
त्यागी प्रिंटिग प्रेस
त्रिलोकपुरी
दिल्ली-110091

अपनी ओर से—

सामने एक जंगल है और हांफता हुआ सन्नाटा ! बीच में जंगल के पार जाने के लिए एक ऊबड़खाबड़ रास्ता है। सड़क तो क्या कहेंगे —हां, पतली-सी पंगडंडीनुमा एक डगर है। कुछ भी हो, है तो रास्ता ही—जंगल के पार जाने का ! ....

हमारे देश—दुनिया के सबसे बड़े आजाद जनतन्त्र देश—में 'अनपढ़ता' या शालीन भाषा में कह सकते हैं : 'निरक्षरता' एक घना भयावह जंगल ही तो है, जिसे पार करने के लिए आजादी के बाद लगातार हम बीहड़ डगर पर चलते रहे हैं और तमाम उलझनों और आपा-धापी के बावजूद चलते रहने की हमारी यह इच्छा और कोशिश आज भी जारी है। रही बात इस लंबे सफर में चलते रहने के दौरान सफलता की,—तो आंकड़े बोलते हैं कि इस समय हम कहां और किस पड़ाव पर हैं। मानना होगा, और मान भी लेना चाहिए, कि हमारे इस लम्बे सफर की, कुछ अड़चनों और भटकावों के बावजूद एक सही दिशा बरकरार है। उदाहरण जरूरी ही हो तो, बेझिझक अपने इसी पड़ाव का हवाला देना ही काफी होगा कि आपके हाथों में आयी यह पुस्तक नवसाक्षरों के लिए प्रकाशित है।

—जी हां, ये नयी पुस्तकें पिछले दिनों अन्तर्राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा संघ द्वारा 'ऐस्पेबे' के सहयोग से सूरजकुंड में आयोजित लेखक कार्यशाला में तैयार हुई थीं। इस तरह की कार्यशालाएं भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ द्वारा पहले भी कारगर रूप से सम्पन्न हुई हैं; लेकिन विषय की विविधता और सर्जनात्मक लेखन की सबरसता के कारण यह सूरजकुंड कार्यशाला सहज ही अनूठी हो गयी। इस कार्यशाला में राजधानी दिल्ली तथा दूसरे शहरों से आए सजग लेखकों ने पूरी हार्दिकता से हिस्सा लिया और राष्ट्रीय एकता, परिवार कल्याण, जनसंख्या शिक्षा, सामाजिक कुरीतियों, महिला शिक्षा, पर्यावरण, ग्रामीण विकास जैसे विषयों पर खुले मन से लिखा। हमें विश्वास है, उनकी लिखी पुस्तकें नव-साक्षर साहित्य के पाठकों, और शिक्षकों को भी, पूरा सन्तोष अवश्य देंगी।

अंत में, 'ऐस्पेबे' और कार्यशाला में सक्रिय रूप से भागीदार लेखकों के प्रति मैं आभारी हूं। ...... साथ ही, इस कार्यशाला को सफल बनाने के लिए भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ के अपने सहयोगियों—डॉ० एस० सी० दत्ता, श्री जे० एल० सचदेव और श्री पद्मधर त्रिपाठी को अपना धन्यवाद देता हूं। आमीन !......

— जे० सी० सक्सेना
महासचिव (अवैतनिक)

भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ
17-बी, इन्द्रप्रस्थ एस्टेट
नई दिल्ली-110002
25 दिसम्बर 1985

सतह के नीचे

सतह के नीचे

"रात के बारह बज गए हैं। बंद करो गाना-बजाना," सुखिया ने करवट बदलते हुए कहा।

"नानी आज तो छठी है। तुम तो कह रही थीं—रात भर गाना-बजाना होगा। लाउड-स्पीकर लगेगा। पूरे गांव की दावत होगी। कुछ भी तो नहीं कराया!" मधु ने उदास

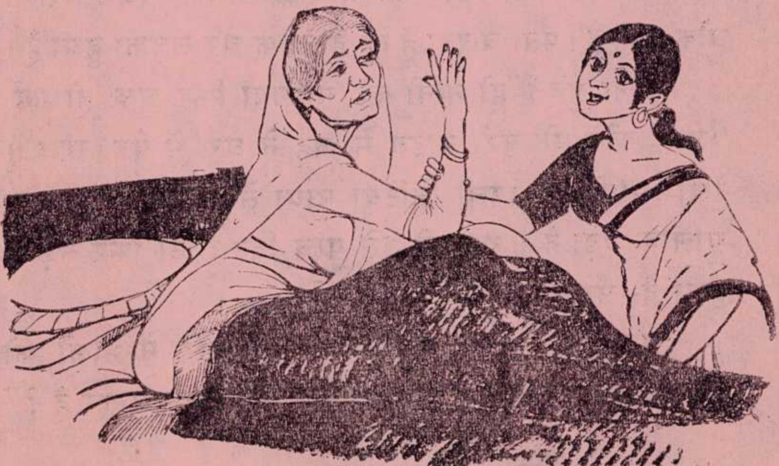

हो कर नानी से लिपटते हुए कहा।

नानी कुछ उत्तर दे इसके पहले ही सरला बोल पड़ी, "अम्मा तुम सो जाओ। हम लोग तो रात भर गायें, बजायेंगे। हमें भी तो भाभी से भारी नेग लेना है।"

यह सब सुन कर मधु की नानी से रहा न गया। उनका पुराण आखिर खुल ही गया।

"तुम लोग क्या जानों! क्या मेरा मन नहीं होता? जाने क्या-क्या अरमान थे। मैं तो ऐसा जलसा कराती जैसा सोनपुर में कभी किसी ने न देखा हो न सुना हो। पूरे सात दिन पतुरिया नचवाती।"

"नानी! अब करा दो न! मेरी अच्छी नानी!" मधु ने बड़े उत्साह से कहा।

"क्या कराऊं, भाग्य ही खराब है। कितना अरमान था! पोता होगा तो धूम मचा दूंगी पूरे गांव में, पर क्या करूं मेरे तो भाग्य ही फूट गए! मन होता है कि दहाड़ मार-मार कर रोऊं। मेरे फूल-जैसे माधो पर बोझ पर बोझ लदता जा रहा है।"

अचानक गोला दगने की आवाज़ आती है जिससे सभी चौंक जाते हैं। पता चलता है कि हरखू के घर लड़का हुआ है।

गोला सुनते ही नानी की गालियां फिर शुरू हो गईं, "जाने कौन-सी बुरी साइत में बहू ने घर में पैर रखा। देखो—माधो की पहली बिटिया माया से दो दिन हरखू का आलोक बड़ा है। अब की उसे पांच दिन छोटा फिर लड़का हुआ है—लड़का!"

सरला से रहा न गया—"अम्मा बेकार में भौजी को कोसती जा रही हो। लड़की-लड़के में भला क्या अन्तर है?"

"तुम लोग पीटो ढोल ! मनाओ खुशी !" सुखिया सिर पर चादर तान कर लेट गयी ।

सरला की भाभी सवाना अपने पास लेटी फूल-सी गुड़िया को निहारे जा रही थी, जिसके बोझ से सास परेशान थी। वह अपने-आप ही बुदबुदा उठी—"लड़की के होने पर घर में उदासी क्यों छा जाती है। यहां तक कि लड़कियों को जन्म देने वाली औरत को भी गिरी नजरों से देखा जाता है। आखिर क्यों ?" पास लेटी अपनी प्यारी गुड़िया विभा को उसने दुलार से सीने से लगा लिया।

सरला को बार-बार अपना बचपन याद आ रहा था—जब इसी तरह उसकी मां भाभी को लड़कियों के होने पर बड़बड़ाने लगती थी। कितनी दुखद बात है। नारी को ही नारी नहीं सुहाती—जैसा कि उसने आसपास देखा है। लड़की होने पर आदमी तो कह देता है, लड़की-लड़के में क्या अन्तर ? लेकिन औरत की समझ में यह सब नहीं आता। वह इन्हीं विचारों की उधेड़बुन में लगी थी।

सरला ने आ कर भाभी के गाल पर प्यार से एक

चुटकी ली–"किस सोच में डूबी हो भाभी ! मैं तो हार जरूर ही लूंगी। यह बहाना नहीं सुनूंगी कि बिटिया हुई है।"

सवाना ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया–"मैंने कब मना किया है नन्द रानी।"

"हां यह तो बात है ! अम्मा ही टांग अड़ा देती है। भइया से फिर कह देगी–अगली बार देना, जब लड़का हो।"

"मैं तो लड़की-लड़के में अन्तर मानती नहीं। जो तेरा मन हो, ले लेना।"

"सच भाभी !" विभा तथा अपनी प्यारी भाभी के गाल प्यार से सहला करके सरला फिर गाने में शामिल हो गई।

ढोलक की थाप और घुंघरुओं की झनकार के संग गूंजते गीत के साथ सरला नाचने लगी–

"हरवा तो लैहो भौजी अपने सगुन का......"

यह गाना समाप्त होते ही वह दूसरे गीत पर थिरकने लगी—

"भौजी झूम-झूम नाचूं तोरे अंगनवां,
अब तो पहना दे भौजी मोका कंगनवां !"

इन ढोलक की थापों, मंजीरों, घुंघुरुओं की झनकार के बीच भी सवाना को लग रहा था कि केवल सरला के गाने, बजाने, नाचने से इस अवसर पर घर में रौनक और हर चेहरे पर मुस्कान नहीं आ सकती, जो कि लड़का होने पर अपने-आप आ जाती।

विभा रोयी। उसे अपने सीने से लगा कर वह फिर विचारों में खो गयी। आखिर समाज से यह सड़ा-गला विचार हमेशा के लिए क्यों नहीं मिट जाता ? घर-परिवार की उन्नति के लिए माता-पिता को सहारा देने तथा स्वर्ग

दिलाने के लिए लड़के को ही क्यों खोजा जाता है। लड़के को ही क्यों सहारा माना जाता है। जबकि यह सब कुछ लड़कियां लड़कों से अधिक अच्छी तरह से कर रही थीं, कर रही हैं और करेंगी।

—खैर छठी, बारही सभी कुछ अनमने मन से मनाए गए। हां सरला जरूर भौजी से हार पा कर खुशी-खुशी विदा हो गयी थी।

माधो तो कुछ नहीं कहता, मगर सास के दिन-भर बड़बड़ाने से सरला ने परेशान हो कर सोचा—मायके ही घूम आऊं। और वह मायके चली गयी।

"मां !......" रिक्शा रुकते ही सरला पूरे उत्साह से बोल पड़ी।

पर यहां क्या मां ? मां तो बोझिल कदमों से धीरे-धीरे आ रही है। ऐसा लगा जैसे उसे सरला के आने की कोई खुशी ही नहीं हुई।

"सरला तू खुश तो है ?" मां ने जबरदस्ती मुस्कराते हुए पूछा।

"खैर, ला अपनी लाडली बिटिया को मुझे दे," कहते हुए मां ने मेरी गोद से विभा को ले लिया।

"काश यह लड़का होता !" गोद में लेते-लेते अचानक ही मां के मुंह से निकल गया।

"क्या मां ?" सरला जोर से बोल पड़ी। क्योंकि ऐसे शब्द धीरे से कहे जाने पर भी उसे सुनाई दे जाते थे।

शायद उसके कान ऐसे शब्दों को पकड़ने में कुछ अधिक ही होशियार हो गए थे।

"कुछ तो नहीं," मां कुछ सकपका गई थी।

"मां! आभा को लेते हुए भी तो तुमने यही कहा था।"

"क्या करूं, आसपास के सभी लोग तो कहते हैं—जाने कैसी तकदीर है। लड़की पर लड़की हो गई है।"

सरला ने गुस्से में कहा—"मुझे तो बुरी नहीं लगती है। इन मोहल्ले वालों के पेट में दर्द क्यों हो रहा है?"

यही मोहल्ला-समाज ही तो हमें नहीं जीने देता। बात-बात पर टोकते हैं।"

"तुम इन लोगों की ऐसी बातों को मत सुना करो मां!"

"लाख कोशिश करती हूं। यहां तक कि मैं तो जब से विभा हुई है, किसी के घर भी नहीं जाती हूं।"

"तो क्या सब अपने-आप आ कर कहती हैं?"

"और क्या!"

"मां, ऐसे ही माहौल से परेशान हो कर यहां मन

बहलाने आई थी। यहां आते ही तुमने भी वही सब कहना शुरू कर दिया।"

मां दुःखी हो कर बोली--क्या करूं सरला, "मैंने रोकने की बहुत कोशिश की; पर जाने कैसे नासपीटे ये शब्द मुंह से निकल गए !"

सरला बस दुःख भरे स्वर में इतना ही बोली–"मां, इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। सारा दोष तो समाज का है।"

तभी स्कूल से राजू लौटा। विभा को गोदी में लेकर वह नाच पड़ा–"वाह मेरी गुड़िया ! प्यारी-प्यारी राज-दुलारी !"......

अगले दिन सरला के बार-बार मना करने पर भी मां ने गाने-बजाने का बुलउवा लगवा दिया।

बीच में ढोलक रख दी गयी। गाना-बजाना कम, खुसर-पुसर ज्यादा होने लगी।

सरला की चाची ने कहा—"जिसके लिए बुलउवा लगा है, वह कहां है ?"

मां ने कहा भी—"गाना तो शुरू करो। राजू ले गया है। अभी आता होगा।"

"न बाबा, हम तो पहले नातिन देखेंगे, तभी ढोलक बजायेंगे।" चाची की हां में हां और लोगों ने भी मिलाई।

"लो देखो, बिलकुल गुड़िया है गुड़िया !" कहते हुए राजू ने चाची की गोद में विभा को लिटा दिया।

"सुन्दर तो है !"

"चेहरा तो बिलकुल लड़कों-जैसा है !"

"सरला ने जाने कौन-सा पाप कर दिया, जो भगवान बनाते-बनाते रुक गए !"

जाने किस जन्म का फल है कि लड़कियां ही हो रही हैं!"

इसी प्रकार की तरह-तरह की आवाजें आने लगीं।

सरला दुखी होकर आंसुओं को पीते हुए पूजा वाले कमरे में जाकर भगवान के सामने बड़बड़ा उठी—

"हे ईश्वर ! ये लोग लड़की-लड़के में इतना अन्तर आखिर क्यों मानते हैं ? सबको तूने ही तो बनाया है।"

बेचारी मां पीछे से आई। सरला को समझा-बुझा कर फिर ले गयी। लेकिन फिर वही सुनाई दिया—

पड़ोसन बुआ चाची से कह रही थी—"हमारी सरला है बड़ी भाग्यशाली ! सब सुख है। बस लड़का नहीं है। खैर, देखो शायद अबकी लड़का हो जाए !"

चाची ने मुंह बिचकाते हुए कहा, "क्या पता ? कहीं फिर......"

इतना सुनते ही सरला सीधी तन कर बैठ गयी। लगभग चिल्लाती हुई बोल पड़ी, "बस मुझे अब कुछ नहीं चाहिए। मेरी ये लड़कियां ही लड़के हैं।"

सरला ने ढोलक खींच कर बड़ी तेजी से गाना उठाया—

"अंगना में फूल खिले
बस दो अंगना में
चाहे गुलाब हो या चमेली
अंगना में"....

काफी रात तक इसी प्रकार ढोलक की थाप तथा औरतों की खुसर-पुसर के बीच नाच-गाना चलता रहा।

—लेकिन सरला के मन का बोझ यहां भी हल्का नहीं हुआ।

बस दो दिन रहकर वह अनमनी-सी अपने घर लौट आयी।

दिन सरकते गए। विभा की दादी ने फिर कहना शुरू किया—

"हे गंगा मइया! तुम्हें पियरी चढ़ाऊंगी। सत्यनारायण बाबा! तुम्हारी कथा सुनूंगी। बजरंगबली बाबा! सवा मन लड्डू चढ़ाऊंगी। बस अबकी मेरी बहू को लड़का दे देना!"

सरला यह सब सुन-सुन कर परेशान हो उठती। वह दिन-रात यही सोचती रहती। अपने मन की बात माधो से कैसे कहे।

माधो को भी लग रहा था। जैसे सरला उससे कुछ

कहना चाह रही है। किन्तु मन की बात कह नहीं पा रही है। एक दिन वह कह ही बैठा—

"सरला, क्या बात है ? आजकल कुछ परेशान लग रही हो।"

"नहीं तो !"

"अच्छा अब हमसे भी छिपाओगी ?"

"तुमसे कैसे छिपा सकती हूं।"

"छिपाना भी नहीं चाहिए। मैं तो तुम्हारे सुख-दुख का संगी-साथी हूं।"

इन बातों से सरला का हौसला बढ़ा। वह साहस करके कह बैठी—

"सुनो, मैं चाहती हूं कि आपरेशन करा लूं।"

"सच !" माधो ने खुशी में सरला को गले से लगा लिया। "मैं भी यही चाहता था। कहीं अम्मा के लड़के के चक्कर में लड़कियों की पूरी पलटन ही न तैयार हो जाए !"

खुशी से चहकती हुई सरला बोली—"हम लोग आभा-विभा को ऐसा बनाएंगे कि सब अपने-आप ही कह उठें कि लड़कों से तो लड़कियां ही अच्छी हैं।"

माधो ने कहा, "एक बात और है, लोग लड़कों के चक्कर में लम्बी लाइन लगा कर बड़ा परिवार दुखी परिवार ही न बना लें।"

आभा-विभा भी समय के साथ बढ़ रही थीं। शरीर में, बुद्धि में, गुण में, यश में। इस जोड़ी को देख कर सरला और माधो फूले नहीं समाते थे। घर-बाहर सभी लोग इनकी

प्रशंसा करते ।

आभा-विभा की दादी भी कह उठती—काश ! यह जोड़ी लड़कों की होती !

"आभा-विभा यह अखबार लो। इसमें निबन्ध-प्रतियोगिता की तारीख आई है । लिख कर समय से भेज देना ।" माधो ने अखबार देते हुए कहा ।

"अरे आभा, आज कढ़ी और दही-बड़े तुझे ही बनाने हैं। विभा, तुम्हें मेजपोश काढ़ना है । हां, मूंग की दाल भिगो देना । कल छुट्टी है । दोनों मिल कर मंगौड़ी-पापड़ बना लेना ।" सरला की इस तरह की आवाजें घर में अक्सर सुनाई पड़तीं ।

माधो और सरला इन दोनों पर पूरा-पूरा ध्यान देते थे । उन्हें पूरी आशा थी । हमारी छोटी-सी बगिया इन्हीं दोनों कलियों से महक उठेगी । सुगन्ध बगिया में ही सीमित नहीं रह जाएगी बल्कि आसपास चारों ओर फैल जाएगी ।

आभा ने विज्ञान तथा विभा ने कला के विषयों को लेकर पढ़ाई पूरी की ।

"आभा-विभा ! यह देखो, अखबार में तुम लोगों की फोटो आई है ।" माधो ने आभा-विभा को पुकारते हुए कहा ।

"कहां ? देखें !" आभा और विभा दौड़कर आईं ।

"पहले तुम्हारी मां को दिखाऊंगा और बताऊंगा कि निबन्ध-प्रतियोगिता में आभा और चित्रकला-प्रतियोगिता में विभा जिले में प्रथम आई हैं ।"

इन लोगों को पहले दिखा दीजिए," सरला ने लड्डू

की प्लेट मेज पर रखते हुए कहा।

"मां! तुम तो बहुत अच्छी हो।" कहती हुई विभा ने माधो के मुंह में लड्डू रख दिया।

अब तो अक्सर सरला को फुसफुसाहट सुनाई पड़ जाती–"सरला की लड़कियां लड़कों से अच्छी हैं!"...... "आभा-विभा तो हमारी लड़कों की पलटन से हर मामले में अच्छी हैं।" हरखू चाचा भी कहने लगे।

जब आभा इंटर में और विभा हाईस्कूल में जिले में प्रथम आईं तब तो सबकी जबान पर बस ये दो ही नाम थे।

सरला तो ईश्वर के सामने खड़ी होकर आखें बंद करके बुदबुदाने लगती–"हे ईश्वर! इसी तरह मेरी लाज बचाए रखना। मैं बस यही चाहती हूं। मेरी आभा-विभा को देख कर लोग मन से यह झूठी धारणा हटा दें कि लड़कियां परिवार और समाज पर बोझ होती हैं।"

"दादी! दादी! मैं पास हो गयी! हरखू चाचा का विलोक फेल हो गया। अब तो बताओ मैं अच्छी कि विलोक?"—कहते हुए विभा दादी के गले लग गयी।

"विभा! मैं तुझे बुरी कब कहती हूं।"—अब दादी की बूढ़ी पर अनुभवी आंखें देख रहीं थीं कि वास्तव में लड़कियां लड़कों से किसी भी क्षेत्र में पीछे नहीं हैं।

समय को कौन रोक सकता है। वह तो आगे बढ़ता ही जाएगा। लेकिन इन्सान वही तरक्की करता है जो समय के साथ ही आगे बढ़ता है।

आज आभा अपने क्षेत्र की प्रसिद्ध डॉक्टर है। विभा पुलिस में डिप्टी सुपरिंटेंडेंट है।

उस दिन तो विभा के आश्चर्य की सीमा ही नहीं रही। विभा हटौंजा थाने का निरीक्षण करने आई थी। अचानक उसके कानों में परिचित आवाज सुनाई दी। उसने उठ कर देखा–विलोक को सिपाही बुरी तरह पीट रहा था।

"विभा, मुझे बचा लो !" विलोक ने दौड़ कर विभा के पैर पकड़ लिए।

विभा यह सब देख कर आश्चर्यचकित हो गयी। उसने सुना तो था कि हरखू काका अपने लड़कों से बहुत परेशान हैं। घर में आठ लड़कों के हो जाने से बेचारे न तो ठीक से खिला पाते हैं, न पढ़ा-लिखा सकते हैं। लेकिन नौबत यहां तक पहुंच गयी है—यह तो उसने सोचा भी नहीं था।

"पहचाना नहीं, मैं विलोक हूं।" विलोक ने गिड़गिड़ाते हुए कहा।

"इसे छोड़ दो," विभा ने आदेश दिया। सिपाही से पूरी बात सुन कर तो पता चला कि यह कई बार पकड़ा भी जा चुका है—कभी राहजनी में, कभी जुए में। अबकी बार यहां चोरी करते पकड़ा गया है।

विभा जमानत पर विलोक को छुड़ा लाई। घर पहुंचते ही बोली—"देखो, दादी विलोक आया है।" घर-बाहर के काफी लोग इकट्ठा हो गए थे। विभा ने पूरी बात बताई। सभी आपस में खुसर-पुसर करने लगे।

सब के जाने के बाद विभा ने पूछा, "दादी, अब बताओ —मैं अच्छी, जो लड़की होकर विलोक को छुड़ा लायी, या विलोक—जो लड़का होकर घर और समाज की समस्या बना हुआ है?"

दादी कुछ बोलती, इसके पहले ही सुनाई दिया—

"दादी, मैं भी आलोक की मरहम-पट्टी करके आ रही हूं। शराब पी कर लड़ाई-झगड़ा किया था। किसी साथी ने पेट में छुरा भोंक दिया था," आभा ने बताया।

गांव-भर में इस घटना की चर्चा हो गयी। सभी के मुंह पर बस एक ही बात थी—सरला की लड़कियां तो कमाल की हैं। लड़कों से बढ़कर हैं।......ये शब्द सरला के घावों पर मरहम का काम करते। माधो भी सुनता और वह भी मुसकरा देता।

फिर एक दिन तो दादी भी बोल पड़ीं—"लड़कियां तो लड़कों से अच्छी हैं।" उस दिन घर में घी के दिए भी जलाए गए।

□□□

भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ

शफीक मेमोरियल

17-बी इन्द्रप्रस्थ एस्टेट

नई दिल्ली-110002